

ॐ भगवत् भक्ति दाताय नमः  
अष्टादशो अध्यायः



श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद  
'मोक्ष संन्यास योग'  
अध्याय

दोहा- मनसा, वाचा, कर्मणा, पाठ करे शत बार।  
मुक्त, जन्म, भवनिधि परे, जीव न बारम्बार॥

श्री निवास, श्री मुख प्रभो, अन्तर्यामी नाथ।  
पृथक-पृथक पुनि तत्व सब, कहो द्वारिका नाथ॥

भक्त बस्सल, भाव वश, भवकर्म, समझाने लगे।  
भाव विह्वल पार्थ को, भवनाथ बतलाने लगे॥ 01

कामना कृत कर्म त्यागो, कहते ज्ञानी त्याग है।  
कुछ बिचक्षण, कर्म फल का, त्याग कहते त्याग है॥ 02

कर्म ही सब दोष युत हैं, कुछ मनीषी भाषते।  
यज्ञ, तप और दान तो कृत कर्म ऐसा मानते॥ 03

त्याग या संन्यास बिन समझे, करो क्या लाभ हैं?  
सत्व, रज, तम तीन का, इनमें भी रहता भाव है॥ 04

यज्ञ, तप और दान तो सब भांति ही कर्तार्थ हैं।  
परम, पावन यह त्रिवेणी, मुक्त करती पार्थ है॥ 05

कर्म तो सब कर्म हैं, तप, यज्ञ अथवा दान हो।  
किन्तु नियमित कर्म का भी यथोचित सम्मान हो॥ 06

कर्म भू हर कर्म का कर्त्तव्य करना चाहिए।  
किन्तु फल की कामना से दूर रहना चाहिए॥ 07

वर्ण, आश्रम, धर्म के सब कर्म विधि अनुकूल हैं।  
अस्तु ऐसे कर्म से संन्यास लेना भूल है॥ 08

कर्म सब दुःख रूप है, इनसे ही काया क्लेश है।  
अस्तु भयवश त्याग, नर का राजसी आवेश है॥ 09

त्याग करके, भी न जातक, त्याग फल को पायेगा।  
सांसारिक सुख भुलाकर भी न मुक्ति पायेगा॥ 10

शास्त्र सम्मत कर्म करना, धर्म है, कर्त्तव्य है।  
फल विरत हो निरत रहना, सात्वकी मन्तव्य है॥ 11

कृत्य कर, अकृत्य से, पर द्वेष रखना है वृथा।  
सत्व गुण सम्पन्न त्यागी, ज्ञानियों की है कथा॥ 12

है असम्भव देहधारी, कर्म का त्यागन करे।  
अस्तु सब फल भाव तज, कर्त्तव्य का पालन करे॥ 13

भाव रखेगा तो अर्जुन, कर्मफल भी पायेगा।  
फल विरत रह, भोग सुख, संसार से तर जायेगा॥ 14

कर्म सिद्धि हेतु अर्जुन, पांच कारक प्रोक्त हैं।  
दूर हों संशय सभी, ये सांख्य से शास्त्रोक्त हैं॥ 15

करण संयुत देह से शुभ कर्म कर कर्ता न बना।  
और करने दे प्रकृति को, ज्ञान कर्मेन्द्रियाँ वहन॥ 16

हेतु, हेतुक, होम, होता, हो रहा हर कार्य है।  
अस्तु पंचम देव इसको कर रहा स्वीकार है॥ 17

देह, मन, वाणी जहां, जिसका भी जो अभिप्राय है।  
यही नर के करण कारक न्याय या अन्याय है॥ 18

प्रकृति वश सब कर्म करते, आत्मा निर्लिप्त है।  
मूढ़ है, कर्ता कहें, तो बुद्धि ही अभिशिप्त है॥ 19

**दोहा- करनहार कोउ और है, जिसका ऐसा भाव।  
मरे न मारे ना करे, उस पर पाप प्रभाव॥**

करता मानस सृष्टि बुद्धि बांधती प्रारूप को।  
कर करण से करता कर्ता कर्म निज अनुरूप वो॥ 20

यह सभी माया रचित, हर जीव के अनुबन्ध हैं।  
मात्र कर्ता भाव तज, कट जाते सब भव बन्द हैं॥ 21

ज्ञान कर्ता, कर्म एकीकृत नहीं, त्रयभेद हैं।  
इनकी गुण संख्या सुनो, जैसा बताते वेद हैं॥ 22

सर्व भूतों में प्रथक दर्शित प्रभु, समभाव है।  
है नहीं अविभक्त ऐसा ज्ञान सात्विक भाव है॥ 23

किन्तु नाना भूत, नाना भाव, नाना भेष हैं।  
इस तरह का ज्ञान नर का, राजसी संवेग है॥ 24

प्रकृति कृत इस देह को, निज रूप सर्वस मानता।  
आत्म मोही जीव की है, तामसी अज्ञानता॥ 25

अस्तु विधियुत, फल विरत, कर्ता विरत, सत्कर्म हैं।  
सात्वकी है कर्म, ऐसा कर्म करना धर्म है॥ 26

अथक श्रम, अभिमान वश यदि भोग साधक चेष्टा।  
फिर तो राजस ही कहेंगे, कर्म को परिवेष्टा॥ 27

कर्मरत, सामर्थ्य बिन, जिसका न आदि न अंत है।  
आत्म मोही तामसी, कर्तव्यरत ही मन्त है॥ 28

मुक्त संगी, धैर्य धारित, जो विगत अभिमान है।  
सुख, दुःख, सिद्धि विरत जो, सात्वकी इंसान है॥ 29

क्रूर कर्मी कामना कृत कर्म करता जायेगा।  
हर्ष, शोकालिप्त कर्ता राजसी कहलायेगा॥ 30

कृत, अकृत, अंजान, शाठ, जड़, घोर कर्मालीन है।  
दीर्घसूत्री जीव तामस कर्म के अधीन है॥ 31

तर्क करके बुद्धि करती, कर्म की अवधारणा।  
तत्समय संतुष्ट हो, धृति धारती है धारणा॥ 32

पूर्ववत् पूर्वोक्त, गुणत्रय, इनके भी मन्तव्य हैं।  
सत्व, रज, तम भाव सुन, अर्जुन यहां दृष्टव्य हैं॥ 33

दोहा- तीन काल, तिहुं लोक में, क्या सिद्धि क्या समृद्धि।  
जिसको इसका भाव है, उसकी सात्विक बुद्धि ॥

धर्म क्या, अधर्म क्या, क्या कर्म क्या नैष्कर्म हैं।  
बिन यथोचित ज्ञान ऐसे कर्म राजस कर्म हैं॥ 34

धर्मवत् अधर्म जिसके, पुण्यवत् सब पाप हैं।  
सर्वथा विपरीत धर्मी, बुद्धि तामस व्याप्त है॥ 35

उक्त तीनों भाव क्रमशः जीव धृति धारण करे।  
रज व तम भययुक्त, सात्त्विक बुद्धि ही तारण करे॥ 36

अस्तु तत्सम बुद्धि, धृति धारित धरा, आकाश हैं।  
सत्व, रज, तम तीन सुख भी, जीव के आवास हैं॥ 37

दुःखदायी, गरल सम, पर अन्त सुख का हेतु है।  
बुद्धि धृति धारित जहां, रहते उमा बृषकेतु हैं॥ 38

भोग सुख देना धनंजय इन्द्रियों का काम है।  
इस क्षणिक संतृप्ति सुख का, राजसी सुख नाम है॥ 39

नींद और आलस्य प्रति पल, भोग मोहासक्त हैं।  
वह प्रमादी मूढ़ता वश तामसी सुख भक्त हैं॥ 40

**दोहा-** तीन अवस्था, तीन गुण, तीन काल, तिहुँ लोक।  
सुर, नर मुनि सब में यहां, ये तीनों आलोक॥

शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मण कर्म से उत्पन्न हैं।  
अस्तु ये तद्मेव ही गुण भाव से सम्पन्न हैं॥ 41

शौच, तप, जप, यज्ञ, पूजा, ब्राह्मणों का कर्म है।  
क्षमा, श्रद्धा, ज्ञान, चर्चा के सहज गुणधर्म हैं॥ 42

सहज आवेशी हैं क्षत्रिय, प्रज्ञा हितकर दण्ड है।  
न्याय हित और धर्म हित ही तानते कोदण्ड हैं॥ 43

कृषि, पशु, वाणिज्य, चिन्ता, वैश्य के शुभ कर्म हैं।  
सहज सेवा भाव सबका, शूद्र का गुण धर्म है॥ 44

सहज, स्वाभाविक वर्णवत, कर्म करना चाहिए।  
सिद्ध है निज कर्मरत यह ध्यान रखना चाहिए॥ 45

सभी वर्णों में सहज अभिव्यक्ति रहनी चाहिए।  
सामने सर्वत्र में यह भक्ति रहनी चाहिए॥ 46

हर वर्ण में, हर रूप में, मैं स्वयं करता कार्य हूँ।  
लोक संचालन निहित ही, वर्णवत् व्यवहार हूँ॥ 47

एक दूजे के लिये, इस लोक का निहितार्थ है।  
कर्म पूजा परम सिद्धि, का सरलतम मार्ग है॥ 48

कर्म कोई भी नहीं कलुषित कदापि नेष्ट है।  
अस्तु निज कुल वर्ण का ही कर्म करना श्रेष्ठ है॥ 49

मार्ग जाते ब्रह्म तक हर धर्म का यह श्रेय है।  
किन्तु निज कुलधर्म ही, हर जीव को श्रद्धेय है॥ 50

धूम्र आवृत्त, अग्नि भी है, अन्य की क्या बात है।  
दोषयुत निज कर्म का, करते न ज्ञानी त्याग है॥ 51

विरत बुद्धि, स्पृहा होकर, जितेन्द्रिय कर्म कर।  
जीव पाता परम सिद्धि, कर्म को नैष्कर्म कर॥ 52

ज्ञान, निष्ठा, ब्रह्ममय, फिर कर्म का आक्षेप क्या?  
अब समासों में सुनो, है कर्म का संक्षेप क्या॥ 53

शुद्ध बुद्धि युक्त धृति, नियमों के यदि अधीन हो।  
विषय भोगों, राग, द्वेषों में न मन लयलीन हो॥ 54

सूक्ष्म भोजन ही करे, जो आत्मा को कांति दे।  
ध्यान पूजा नित्य कर एकान्त, मन को शांति दे॥ 55

दर्प बल, क्रोधादि दोषों से रहित हो जायेगा।  
शांत मय स्वयमेव ही, प्रभु की शरण हो जायेगा॥ 56

आत्म परमानन्द एकी भाव फिर क्या शोच्य है।  
क्या करें भवफंद मन योगी है, इन्द्रिय मोच्य है॥ 57

भक्त, सब भूतों में, मेरे ज्ञान से आविष्ट हैं।  
भक्तिवत् संज्ञान से, पाता मेरा प्राविष्ट है॥ 58

मत्परायण, नियतकर्मी मुझसे नाता जोड़ता।  
फल विरत, मुझमें निरत भव फंद सारे तोड़ता॥ 59

योग, बुद्धि मुझमें स्थित करके सारे कर्म करा।  
फिर कहां आशा निराशा, यदि मेरा अवलम्ब करा॥ 60

मुक्त कर दूंगा तुझे, संसार के संताप से।  
फिर भी हठवश मूढ़ता की, नष्ट होगा ताप से॥ 61

उच्च कुल, क्षत्रिय जनम, पाकर न मन अवरुद्ध करा।  
प्रकृतिवश बेवश है अर्जुन, हर्षवत उठ युद्ध करा॥ 62

पूर्व संचित, प्रकृतिवश, इस कर्म से आबद्ध है।  
यह तेरी सृष्टा धनंजय, युद्ध में सन्नद्ध है॥ 63



युद्ध तो मैं ही लड़ूँगा, श्रेय तुझको जायेगा।  
व्यर्थ कर्ता भाव से, भव फंद में फंस जायेगा॥ 64

अस्तु आ मेरी शरण में, सब भाव कुंठा त्याग दे।  
पा मेरी अविरल कृपा, अपनी सुगति को मार्ग दे॥ 65

गुह्यतम् अति, गूढ़, दुस्तर, ज्ञान का व्याख्यान है।  
बुद्धि धृति से ध्यान धर, कर कर्म का आह्वान है॥ 66

दोहा- गूढ़, गुप्त सब प्रकट कर, रखा नहीं दुराव।  
अति प्रिय सुन हितकर बचन, तेरा मित्रवत् भाव॥

मुझमें मन, मम भक्त बनकर पूज, मेरा नमन कर।  
यह प्रतिज्ञा है मुझे पायेगा, मेरा भजन कर॥ 67

मुक्त कर दूँगा तुझे, हर पाप से, प्रारब्ध से।  
आ शरण मेरी न हो अब कर्म से आबद्ध रे॥ 68

अमृतमय मम वचन अर्जुन, गुह्यतम अति गूढ़ है।  
मत कदापि प्रकट कर, जो जीव शठ, जड़, मूढ़ है॥ 69

परम पावन, पुरुष प्रेमी, पात्र पायें प्रेम से।  
सरस, सलिल, सुधा सरित, संगम नहायें नेम से॥ 70

कथन कर या श्रवन कर, संशय रहित हो जायेगा।  
भोग कर संसार सुख, फिर अंत मुझको पायेगा॥ 71

हर घड़ी, हर पल मेरा प्रिय, जीव ऐसा धन्य है।  
अभी या आगे न वैसा, फिर कोई अन्यन्य है॥ 72

धैर्य धारित, धृति धरा पर, धारता इस ग्रन्थ को।  
ज्ञान के इस यज्ञ से स्वीकारता उस सन्त को॥ 73

लोल लोचन, लब्ध मन, लवलीन इस लालित्य से।  
श्रवन सुन्दर सुधा सम स्वर, सुनें शुभ साहित्य के॥ 74

फिर उसे दुर्लभ नहीं कुछ, लोक या परलोक में।  
धन्य जीवन संत जो आते हैं इस आलोक में॥ 75

गुण गुणाकर, गुणगुना, गीता गहर, गम्भीर है।  
सत्य कह कौन्तेय, सुन संशय है, या कि अधीर है॥ 76

दोहा- रोम-रोम में पुलक भर, अर्जुन बोले बोल,  
सजल नयन, गद्गद मन, लोचन अटल अड़ोला॥

अप्रतिम, अनुपम, अनाशन, अज्ञ पर आकृष्ट हो।  
मेघवत बरसे कृपा, फिर मोह क्यों न नष्ट हो॥ 77

विश्व प्रभु कर विश्ववत् विश्वास स्थिर कर दिया।  
बुद्धि स्थित प्रज्ञ कर, अज्ञान सारा हर लिया॥ 78

अब न विस्मृत, पूर्ण स्मृति, सत्य सब संज्ञार्थ है।  
नाथ बस आज्ञा करें, पालन को आतुर पार्थ है॥ 79

दोहा- यों रहस्य रोमांच युत, यह अद्भुत संवाद।  
श्री मुख से सुनकर कहा, संजय ने महाराज॥

अभी समय है धर्म ध्वज, करके मन को शांत।  
रोको ऐसे युद्ध को, हे गांधारी कान्त॥

व्यास जी की है कृपा, जो गूढ़ गुह्यतम गुना।  
अमित विक्रम योग अद्भुत, स्वयं श्रीमुख से सुना॥ 80

राज ऋषि रग-रग में मेरी, रम रहा रोमांच है।  
कौरवों की कामना, कलुषित किये मन क्लान्त है॥ 81

देव या दुर्देव जाने, दीनता इस दैन्य की।  
हे हरी! रक्षा करो, अब कौरवों की, सैन्य की॥ 82

द्रोण प्रिय अर्जुन जहां, गांडीव की टंकार है।  
जहां केशव पान्चजन्यी शांख की झंकार है॥ 83

उस समर का पूर्व ही संज्ञात सबको हश्र है।  
बाण वर्षा पार्थ की, रोके न ऐसा अस्त्र है॥ 84

दोहा- रंग अबीर, गुलाल युत, हुआ व्योम का हाल।  
सोम, सोम के नाथ का, रंग हो गया लाल॥

वक्र तुण्ड की तुण्ड ने मचा दिया कोहराम।  
धन्य-धन्य कह देवगण, गवने निज-निज धाम॥

चलो अरूण कहें अदिति सुत, बिखरीं रश्मि अनंत।  
विजय ध्वजा पर दृढ़ हुये अंजनि सुत हनुमंत॥

इति श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद  
मोक्ष संन्यास योग अष्टादश अध्याय समाप्त।